IJCRM

International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

सुमित्रानंदन पंत का काव्यचिंतन: मूल्य और महत्व

प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा तथा पत्रकारिता विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20459172

सारांश

इस धारा-सा ही जग क्रम
शहस्वात इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम

नौकाविहार की ये पंक्तियां सुमित्रानन्दन पंत की काव्य साधना, काव्य मूल्य एवं चिन्तन पक्ष के शिल्प को प्रकट करती हैं, जो पंत जी की रचनायात्रा में आद्यन्त विद्यमान हैं। पंत जी अन्वेषी, भारतीय सांस्कृतिक जागरण की निरतर प्रवाहमान, परिवर्तनशील गतिशील परिस्थितियों में क्रमिक विकासमान स्वभाव के जीवनधर्मी,मूल्यधर्मी एवं आस्थाधर्मी कवि, विचारक हैं। उनके काव्य मूल्य एवं काव्यचिन्तन में जहाँ एक ओर परम्परा से टकराहट है, वहीं परम्पराओं से टकराकर उसे नये रूप में सृजित कर अनेक जीवनधर्मी मूल्यों से जुड़ने की गतिशील साधना है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 09-03-2025
- **Accepted:** 28-04-2025
- **Published:** 30-04-2025
- **IJCRM:**4(2); 2025: 509-516
- **©2025, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी, सुमित्रानंदन पंत का काव्यचिंतन: मूल्य और महत्व. Int J Contemp Res Multidiscip. 2025;4(2):509-516.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

कुंजी शब्द: अन्वेषी,काव्य-मूल्य, जीवनधर्मी,काव्य-चिन्तन, संवेदनशील, प्रकृति निरीक्षण, सौन्दर्यबोध, रवीन्द्र काव्य, जागरण, आत्माभिव्यक्ति।

परिचय

सुमित्रानंदन पंत ने स्वीकार किया है कि "अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में, कवि या साहित्यकार कहाँ से कैसे, प्रेरणा ग्रहण करता है 'मन्दः कवि यशः प्रार्थी' का कार्य आरम्भ करता है, यह बतलाना बड़ा कठिन है। जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने मेरे हृदय को अपने सौन्दर्य स्पर्श से छुआ और उसमें एक प्रेरणाशिखा को जगा दिया। उसके रूचि के अनुकूल काव्य के उपादानों को पहचान कर उनका चयन तथा संग्रह करने लगा। यह ठीक है कि दीपशिखा जैसे तद्वत दूसरी दीपशिखा को जन्म देती है उस प्रकार पिछली पीढ़ी की काव्य चेतना ज्यों की त्यों मेरे भीतर नहीं उतर आयी। मेरे मन ने उसका अपनी रूचि के अनुरूप संस्कार कर उसमें अपनेपन की छाप लगा दी।1

यह अपनापन ही वह तत्त्व है, जो उन्हें न केवल छायावादी काव्य चिन्तन बल्कि हिन्दी के निजी काव्यशास्त्र की सम्भावनाओं के इतिहास में

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

महत्त्वपूर्ण स्थान पर रखती है,इसीलिए उनकी कविता, उनका चिन्तन अनेक देशी विदेशी विचारधाराओं की गतिशील ध्वनियाँ तो समेटे हुए ही है, अनेक साहित्य-आन्दोलनों, सांस्कृतिक आन्दोलनों की गतिशील भावभूमि एवं झंकार भी लिए हुए भी अपनी खास विशिष्टताओं के कारण रचनात्मक है। शेली, वर्ड्सवर्थ आदि से प्रभावित हैं, तो कालिदास जैसे संस्कृत कवियों के साहित्य संस्कार भी उनमें हैं। यह भी सत्य है कि पश्चिम के कवियों ने भी भारत के योगदान को स्वीकार किया है। जर्मनी के गेटे ने कालिदास की शकुन्तला पर कविता लिखी तो रूमानिया में ऐमेनेस्कू ने कामदेव पर काव्य लिखा। अज्ञेय ने लिखा है कि, "यह बात चौंकानेवाली हो सकती है, पर निराधार नहीं कि यदि छायावादी आन्दोलन की एक प्रेरणा हिन्दी कवि द्वारा शेली और कीट्स का आविष्कार था तो रोमांटिक आन्दोलन की एक प्रेरणा यूरोपीय कवि द्वारा कालिदास का अविष्कार था। निःसन्देह केवल एक प्रेरणा के आधार पर कोई एक व्यापक स्थापना करना भूल होगी, पर यह बात दोनों दिशाओं के प्रभाव के बारे में कही जा सकती है।'2 वैसे यह कहना सही है कि हिन्दी कविता पर रोमांटिक काव्य का चाहे जो प्रभाव है उसमें भारतीय चिंतन धारा प्रतिध्वनि सुनाई देती है, इसे यों भी सिद्ध किया जा सकता है कि उस काव्य के द्वारा प्रभावित कवि कालिदास की ओर लौटे, उन्होंने एक नयी दृष्टि से कालिदास को देखा और अपनाया या कहें कि अपने समय की चेतना के अनुरूप कालिदास का पुनराविष्कार किया।

कविता का स्वरूप एवं हेतुः

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कालिदास की कृतियों के अनुवाद के माध्यम से कविता एवं भाषा को संस्कारित कारित करने का कार्य किया तो पन्त जैसे छायावादी कवियों के सामने तो कालिदास सशरीर अपनी मूल्यधर्मिता के साथ उपस्थित हैं। हिमालय ने कालिदास को निर्मित किया, तो पन्त को भी । पन्त के लिए तो प्रकृति ही धात्री बन गयी, जिसने अपना विशाल स्नेहिल, कल्पनाशील हृदय पंत को अर्पित कर दिया-

माँ से बढ़कर रही धात्रि, तु बचपन में मेरे हित ।
धात्रि कथा रूपक भर : तने किया जनक बन पोषण

मातहीन बालक के सिर पर वरदहस्त धर गोपन ।(कूर्माचल के प्रति)
प्रकृति पंत के काव्यमूल का प्रस्थान बिन्दु है, जिसने उन्हें जड़ताओं से मुक्त रखा, सत्यं शिवं सुन्दरम् का साधक बनाया। प्रकृति की जीवन्तधर्मी, संवेदनधर्मी चेतना ने पंत की काव्ययात्रा एवं चिन्तन कर्म को सदैव विकासशील रखा। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि

- स्वभाव से ही अत्यन्त भाव प्रवण तथा कवि होने के कारण मेरी रूचि पुस्तकों की ओर अधिक नहीं रही। मैंने व्यक्तियों के जीवन से, परस्पर के जनसमागम से तथा महान पुरूषों के दर्शन एवं उनके मानसिक सत्संग से कहीं अधिक सीखा है, जिसे मैं सहज सीखना या सहज शिक्षा कहता हूँ। इससे भी अधिक मैंने प्रकृति के मौन-मुखर सहवास से सीखा है।"3
- कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है।"4
- जब मैंने पहले लिखना प्रारम्भ किया था तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का का वातावरण ही एक ऐसी सजीव वस्तु थी जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी और किसी भी ऐसी परिस्थिति या वस्तु की मुझे याद नहीं जो मेरे मन को आकर्षित कर मुझे गाने अथवा लिखने की ओर अग्रसर करती रही हो।"5
- मेरे ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे जिन्होंने मुझे कवि कर्म करने की प्रेरणा दी, किन्तु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत प्रदेश की दिगन्तव्यापी प्राकृतिक शोभा ही ने की।"6
- स्पष्ट है कि प्रकृति ने तो पंत जी की कविता यात्रा एवं चिन्तन कर्म के प्रमुख प्रेरक तत्त्व के रूप में उनकी संवेदना के धरातल को व्यापक बना दिया, विचार के तन्तुओं को विस्तृत कर दिया, किन्तु इसके साथ ही कुछ अन्य प्रेरक तत्त्व भी है, जो पंत जी के लिए ही नहीं किसी भी कालजयी रचनाकार की रचना का हेतु हो सकता है-
- इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक देश का कवि, चिन्तक या कलाकार अपने देश की बाहर भीतर की परिस्थितियों से ज्ञात-अज्ञात रूप से प्रभावित होता है। हमारा देश सदियों से पराधीन रहा है जिसके कारण हमारे जीवन तथा मन में एक गहरा विषाद घिरा रहा है। इस गहरे विषाद को मेरे समकालीन कवियों ने वाणी दी है।"7
- कवि या लेखक अपने युग से प्रभावित होता है, साथ ही वह अपने युग को प्रभावित भी करता है। छायावादी काव्य वास्तव में भारतीय जागरण की चेतना का काव्य रहा है। उसकी एक धारा राष्ट्रीय जागरण से सम्बद्ध रही है, जिसकी प्रेरणा गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के युद्ध में निहित रही है और दूसरी धारा का सम्बन्ध उस मानसिक-दार्शनिक जागरण की भावनात्मक तथा सौन्दर्यबोध सम्बन्धी प्रक्रियाओं से रहा है, जिसका समारम्भ औपनिषदिक विचारों तथा पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभावों के कारण हुआ।"8
- "ज्योत्सना सन् १९३१ की रचना है, उसके बाद अपने देश के स्वातंत्र्य युद्ध के जागरण तथा मार्क्सवाद के अध्ययन के फलस्वरूप मैंने 'युगान्त', 'युगवाणी' तथा ग्राम्या में संकलित अनेक कविताएँ लिखीं जिनमें मैंने एक ओर अपने देश की मध्ययुगीन परम्पराओं के विरूद्ध अपनी आवाज उठायी और दूसरी ओर आर्थिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन किया।"9
- "छायावादी कविता केवल रवीन्द्र काव्य की प्रतिनिधि ही नहीं रही, उसने अपने युग जीवन की शक्तियों से स्वतंत्र रूप से प्रेरणा ग्रहण की।"10
- "सन् ४० से ४७ तक द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों के कारण मेरे मन का एक नया आयाम विकसित हुआ। मुझे प्रतीत होने लगा कि स्थायी विश्वशान्ति तथा लोकमंगल के लिए केवल बाह्य जीवन के यथार्थ की धारणा को बदलना ही पर्याप्त नहीं होगा, उसके लिए मानवता की विस्तृत सामाजिक-आर्थिक धरातल के साथ ही एक व्यापक उच्च सांस्कृतिक धरातल के विकास की आवश्यकता पड़ेगी।"11

पंत जी की दृष्टि में कवि के लिए कविता का हेतु अपने समय की सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक चुनौती तो रहती ही है साथ में युग सत्य एवं युगीन मूल्य चेतना भी प्रेरणा का काम करती है। भीतरी एवं बाहरी दुनिया का मूल्य दोनों ही समवेत रूप में किसी रचनाकार की संवेदना को झंकृत करते हैं।पंत जी प्रकृति के माध्यम से कविता को ही नहीं, पूरी चिन्तन प्रक्रिया, मूल्य संवेदना को कृत्रिमता से स्वाभाविकता की ओर, महलों, चहारदीवारी से निकालकर खुली एवं स्वच्छंद प्रकृति में लाना

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

चाहते हैं, उसे मनुष्य के राग-रागिनी का विषय बनाना चाहते हैं, मनुष्य समाज के व्यापक जीवन संवेदना से जोड़ना चाहते हैं। पन्त जी की 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' की प्रगतिशील जीवन दृष्टि ने उनकी काव्यसाधना, काव्यमूल्य को निरन्तर गतिशील बनाये रखा, जीवन के सातत्य एवं विकासमान संवेदनाओं से कविता को जोड़े रखा। पन्त के लिए प्रकृति चिन्मय है।उनका स्वर ही नहीं मूल्यदृष्टि है - प्रकृति।प्रकृति ही राग और रागिनी है,इसी ने पंत जी को रचनात्मक बनाया।

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि, डोले मधु बाल ।

इसीलिए पन्त आत्म प्रसार की आकांक्षा से प्रकृति की विराटता का आश्रय देकर जहाँ एक ओर जीवन जगत् के मूल में प्रकृति को सम्मान देते हैं, वहीं मध्ययुगीन मानसिकता, रीतिकालीन जड़ताओं को तोड़कर काव्य को खुले धरातल पर शेष प्रकृति के साथ जोड़ देते हैं। पन्त ने रीतिकालीन दरबारी कविता की बन्द चहारदीवारी के खिलाफ पल्लव की भूमिका में लिखा है कि, "हम इस ब्रज की जीर्ण शीर्ण छिद्रों से भरी, पुरानी छींट की चोली नहीं चाहते, इसकी संकीर्णकारा में बन्दी हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रूक जाता है।" क्योंकि पन्त के लिए कविता जीवनानुभूति का सच्चा आत्मसाक्षात्कार और जीवन की पुनर्रचना है।उनके अनुसार 'मेरा काव्य भू-जीवन, लोकमंगल तथा मानव मूल्यों का काव्य है, जिसमें मनुष्यत्व और जनगण दो भिन्न तत्त्व नहीं, एक दूसरे के गुण-राशि वाचक पर्याय हैं।'12 इसीलिए पंत जी के कवि कर्म के तरह ही उनका चिन्तन कर्म भी विकासमान हैं। प्रकृति सौन्दर्य में निमग्न कवि का चिन्तन लोककर्म में लीन हो जाता है। उन्होंने अपनी कवि कर्म की सार्थकता इन शब्दों में रेखांकित किया है, 'यदि वे लोकमंगल तथा मानवप्रेम की भावना की अभिवृद्धि करने में सहायक हो सके तो मैं अपने कवि कर्म को सफल समझूँगा।' यह केवल पंत जी के कवि कर्म का लक्ष्य है, बल्कि किसी भी कवि के कवित्व की कसौटी भी हो सकती है और इसी कसौटी का कवि कालजयी होता है। पंत जी ने अपने इसी लेख में लिखा है कि 'आज के कवि तथा कलाकार का मैं यह कर्तव्य समझता हूँ कि वह विश्व मानवता के पथ को युग जीवन के वैषम्यों तथा विरोधों से मुक्त कर, इस पृथ्वी के देशों को एक-दूसरे के निकट लाकर, उन्हें चिरस्थायी मानव प्रेम, जीवन सौन्दर्य, तथा लोक कल्याण की ओर अग्रसर कर सके।'13 इसीलिए 'वीणा' में 'भारतमाता' शीर्षक कविता काव्य के आदर्श को, उसकी रचना प्रक्रिया की पूरी प्रासंगिकता को स्पष्ट करने का सामर्थ्य रखती है-

उसे चाहिए लौह संगठन,
सुन्दर तन श्रद्धा दीपित मन,
भू जीवन प्रति अथक समर्पण
लोककला मयि
रस विलासिनी !

पंत जी इस कविता को अपनी रचना का पिछला दशक मानते है, मेरी दृष्टि में यह छायावादी काव्यचिन्तन की प्रेरकभूमि है, जहाँ साहित्य को लोक जागरण का प्रतीक है।

कविता का सत्य एवं कविता की व्याप्तिः

कहना न होगा कि प्रकृति ने न केवल पन्त की संवेदना को बहुधर्मी,बहुरंगी बनाया बल्कि उनकी स्थापत्य शैली को भी अनेक जड़ताओं से मुक्त कर प्रकृति के विकास से, निरन्तर परिवर्तित सौन्दर्य दृष्टि से जोड़कर एक नये प्रकार के काव्यमूल्य का निर्माण किया, जो अपने समय के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास की जीवन्त साक्षी है। उन्होने सदैव मध्यकालीन दर्शन के रूढ़, जड़ सिद्धान्तों पर आलोचनात्मक दृष्टि रखी, उसके निर्बल पक्षों की कटु आलोचना की-

गा, कोकिल बरसा पावक- कण
नष्ट - भ्रष्ट हो जीर्ण - पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन ।
(युगान्त)

जब कवि के लिए कविता लिखने की वस्तु नहीं, जीने का तौर-तरीका, जीवन यात्रा हो जाती है, तब कवि की जीवन यात्रा के समानान्तर ही कविता एवं उसकी मूल्यनिष्ठा, सजीव, स्वतंत्र, विकासमान चरित्र धारण कर लेती हैं। कवि की रचना एवं चिन्तन भूमि ही उसका वाङ्मय शरीर या जीवन हो जाती है, तब सुमित्रानन्दन पंत जैसे कवि का रेखाचित्र बनता है। वे स्वीकार करते हैं कि, कला से उसके माध्यम से व्यक्त सत्य का मूल्य मेरे लिए अधिक है। मानवता का वैयक्तिक तथा सामूहिक दृष्टि से बहिरन्तर रूप में परिपूर्ण निर्माण एवं विकास हो सके तभी वह उस समग्र सौन्दर्य की प्रतिनिधि हो सकती है जिसके दर्शन मुझे कभी हिमालय की गोद में हुए थे।' कविता का लक्ष्य मनुष्य की बाहरी एवं भीतरी दोनों ही दुनिया से जुड़ा है। यदि कविता इसके किसी भी एक पक्ष की है, तो पंत जी की दृष्टि में वह कविता का अर्द्धसत्य है, मनुष्य की आधी दुनिया की सच्चाई है, इसीलिए पंत जी की दृष्टि में, 'काव्य मानव जीवन के समग्र तथा सम्पूर्ण सत्य का दर्शन कराता है, जिसमें देशकाल नाम-रूप के बदलते हुए विकासशील खंड सत्य सन्तुलन तथा सामंजस्य रूप रेखाओं के रूप में ही नहीं उसकी गहनतम आन्तरिक अनुभूतियों के रूप में प्रतिबिम्बित होता है।'14 पंत जी के लिए कविता जीवन की सम्पूर्णता-वैयक्तिक जीवन एवं सामाजिक जीवन को समझने का प्रयत्न है, उसकी व्याख्या है। इसीलिए वे वे काव्य के सत्य को सृजनात्मक जीवन दर्शन कहते हैं, ऐसा सृजनात्मक जीवन जिसके आन्तरिक सत्य एवं बाहरी सत्य में कोई परस्पर विरोध नहीं है।उनके विचार हैं,'कवि अथवा कलाकार के निकट एक तो उसी का भाव जगत रहता है, जो मानव मन के संवेगों का क्रीड़ास्थल है-दूसरा उसके सामने बाह्य जगत का सामाजिक वातावरण रहता है, जो उसके जीवन को प्रभावित करता है।'15 कविता का धरातल सामाजिक-राजनैतिक आर्थिक जीवन यथार्थ तो है ही गहनतम विश्वास एवं अन्तरतम् अनुभूति भी है। दरअसल पंत जी जैसे चिन्तक के लिए यह दोनों धरातल न तो अलग-अलग है और न ही इसमें कोई विरोध है। मनुष्य के लिए दोनों ही यथार्थ मिलकर एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन निर्मित करते हैं, जिनसे कविता जुड़ी होती है। पन्त जी का कथन है कि 'वैयक्तिक मूल्य, मानव जीवन-विकास में गुणात्मक उन्नयन के लिए आवश्यक है तो सामाजिक मूल्य राशिवाचक अभ्युदय के लिए। व्यक्ति और समाज मानव जीवन के सत्य के दो अनिवार्य अंग हैं जो एक-दूसरे पर अविच्छिन्न रूप से निर्भर हैं।' क्योंकि पंत जी की दृष्टि में व्यक्ति और समाज की चेतना का सार तत्त्व एक ही है, क्योंकि व्यक्ति और समाज दोनों इतिहास या सभ्यता की देन हैं। एक की भी

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अपूर्णता, दूसरे को अपूर्ण रखती है। कविता का पूर्ण सत्य ही नहीं, मनुष्य का पूर्ण सत्य भी इन दोनों के सामंजस्य एवं सन्तुलन पर टिका है।पंत का दर्शन भावात्मक एकता का दर्शन है।

समग्रतः पंत जी के लिए कविता का सत्य जीवन को उदात्त बनानें का, मूल्यधर्मी बनाने का, सृजनात्मक निर्माण का, सांस्कृतिक स्वत्त्वबोध की प्रतिष्ठा की प्रेरणा है, सत्य है, इसीलिए वे अवचेतन की सत्ता स्वीकार करते हुए भी अतिचेतन का साक्षात्कार करने पर बल देते हैं। कविता एवं उसके मूल्यों का अन्तिम ध्येय जीवन को उठाना, उन्मुखी बनाना है। 'कला और बूढ़ा चाँद' में उनका स्वर है-

शिव की कला ही
सत्य और सुंदर है।

पंत के लिए कविता का मूल्य सत्यं, शिवं, सुन्दर का संधान है। उन्होंने लिखा है कि, 'काव्य के सत्य में सार्वभौम तत्त्व पाये जाते हैं और वह लोकोत्तरानन्द प्रदान करता है।'16 यह लोकोत्तरानन्द लोक से मुक्त नहीं है, और न ही लोक विरोधी क्योंकि पंत जी की यह घोषणा है कि, 'आज के युग का काव्य यदि लोकजीवन से व्यापक सहानुभूति नहीं रखता, वह अधिक से अधिक से लोकश्रेय के उपादान प्रस्तुत नहीं कर सकता, वह ह्रासोन्मुखी सामंती तथा मध्यवर्गीय संस्कृति की सीमाओं को अतिक्रम कर तथा मनुष्य के प्रति अन्याय और उत्पीड़न की, विद्रोह भरे स्वरों में, भर्त्सना कर भावी मानवता की ओर अग्रसर नहीं होता तो उसके पैरों की लँगड़ाहट अभी दूर नहीं हुई है।'17 पंत जी का यह लोकोत्तर आनन्द लोक कल्याण एवं लोक मंगल के माध्यम से होकर ही उर्ध्वमुखी होता है। यदि किसी कवि में लोककल्याण की चेतना नहीं है, लोकमंगल के भाव की संवेदनाओं का संसार नहीं है, तो वह स्वयं एवं उसकी कविता दोनों ही निरर्थक है, क्योंकि पंत जी की दृष्टि में मनुष्यता का कल्याण ही साहित्यकार की आस्था का मुख्य विषय है और यह आस्था सामाजिक जीवन यथार्थ एवं वैयक्तिक जीवन यथार्थ के सामंजस्य पर टिकी है। यह सामंजस्य ही कविता का प्रयोजन भी हो सकता है और कवि के कवित्त्व की कसौटी। पंत जी ने इसीलिए लिखा भी है कि, 'सत्य की ऐसी बहुमुखी और बहिर्मुखी मान्यताओं एवं आस्थाओं के युग में, मुझे मानवता के निर्माण एवं कल्याण के लिए मानव जीवन के भीतरी बाहरी दोनों संचरणों की प्रेरणा शक्तियों तथा मान्यताओं में सामंजस्य स्थापित कर आगे बढ़ना ही विवेकसम्मत प्रतीत होता है।'18 काव्यचिन्तन के इसी लोकमंगलवादी भूमिका से जुड़े होने के कारण पन्त, जी साहित्य की चेतना को सार्वभौम मानते हैं, 'आज का साहित्य एकदेशीय अथवा एकजातीय होकर उन्नति नहीं कर सकता, उसे सार्वभौम बनना ही होगा।' इसीलिए उनकी दृष्टि में साहित्य के मर्म को समझने का अर्थ है मानव जीवन के सत्य को समझना। साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है। इसीलिए पन्त जी यह मानते हैं कि, 'उसमें मानव चेतना की ऊँची से ऊँची चोटियों का प्रकाश, मन की लम्बी चौड़ी घाटियों का छायातप तथा जीवन की आकांक्षाओं का गहरा रहस्यपूर्ण अंधकार संचित है।'19 इसीलिए साहित्य के माध्यम से मनुष्य जीवन को संचालित करने वाली शक्तियों तथा उनके विकास की दिशा को नहीं समझ सके, तो हम वास्तव में साहित्य के परिसर में रहने के, विचार करने के अधिकारी नहीं हैं। इसीलिए पंत जी की दृष्टि में साहित्य एवं साहित्यकार दोनों ही देशकाल से जुड़े होने के बावजूद, देश-काल की चेतना से संचालित होने के बावजूद, देश-काल के यथार्थ उद्घाटन के बावजूद अपने प्रभाव की व्यापकता में देश-काल की सीमा से मुक्त होता हैं। देशकाल उसे बाँधता नहीं है, बल्कि व्यापक मनुष्यता से जुड़ने की परिस्थिति देता है। गालिब पर लिखे अपने निबन्ध में उनका विचार है कि, 'कोई भी महान साहित्यकार या कवि किसी विशेष भाषा या किसी विशेष देशकाल की परिधि में सीमित नहीं रह सकता। उसका कृतित्त्व सार्वभौम होता है और उसकी सृजनचेतना भाषा के तटों को लाँघकर, रसातिरेक की बाढ़ में, समस्त मानवता के हृदय को आप्लावित करने की शक्ति रखती है।'20 किन्तु देश-काल की सीमा से किसी कवि का मुक्त हो जाना एक कठिन साधना है, यह तभी हो सकता है जब सर्जक या रचनाकार थोथे तथा खोखले शब्दाडम्बर से ऊपर उठकर शब्द तथा अर्थ के मर्म में पैठने की क्षमता रखता हो और वह अपने युग प्रबुद्ध मन की अंगुलियों के स्पर्शों से काव्य-तन्त्री में मानव आत्मा के स्वर को उसी प्रकार जगाने की सामर्थ्य रखता हो जिस प्रकार वीणाकार अपनी साधना में तन्मय वीणा के तारों से अश्रुत सम्मोहक संगीत की सृष्टि कर सकता है।'

काव्य माध्यम एवं काव्य भाषा:

पंत जी का काव्य चिन्तन लोकजागरण के तत्त्वों के अनुसंधान का चिन्तन है, इसीलिए इस लोकजागरण की कड़ी में सर्वप्रथम पंत जी ने काव्य माध्यम के रूप में भाषा की जड़ता को तोड़ने के लिए युगीन संवेदना का पक्ष चुना एवं खड़ी बोली को जनजागरण का मूर्त रूप बना दिया। पंत जी का कथन है, 'खड़ी बोली जागरण की चेतना थी, द्विवेदी युग जिस जागरण का प्रारम्भ था, हमारा युग उसके विकास का समारम्भ। छायावाद के शिल्प कक्ष में खडी बोली ने धीरे-धीरे सौन्दर्यबोध, पद-मार्दव तथा भावगौरव प्राप्त कर प्रथम बार काव्योचित भाषा का सिंहासन ग्रहण किया।'21 दरअसल महावीर प्रसाद द्विवेदी जी से आगे बढ़कर हिन्दी कविकर्म एवं चिन्तनकर्म दोनों ही स्तरों पर केवल भाषा ही नहीं रही, बल्कि एक नयी चेतना, नयी प्रेरणा का प्रतीक बनकर आयी थी। 'छायावाद से पहले खड़ी बोली का काव्य भाव तथा भाषा की दृष्टि से निर्धन ही रहा। छायावाद ने उसमें अंगड़ाई लेकर जागते हुए भारतीय चैतन्य का भाव-वैभव भरा ! विश्वबोध के व्यापक आयाम, लोकमानव की नवीन आकांक्षाएँ, जीवन प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत अहंता के मांसल सौन्दर्य का परिधान उसने पहले पहल हिन्दी कविता को प्रदान किया।' 22 इस कारण वह युगीन संवेदना से मैत्री करके तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक राजनैतिक एवं आध्यात्मिक जागरण की भावभूमि भी बन गयी थी। पन्त जी ने लिखा है कि 'देश में सर्वत्र-सभी क्षेत्रों में नवीन जागरण की लहर दौड़ रही थी, नवीन अभ्युदय के चिह्न उदय हो रहे थे, हमने उस जागरण, उस अभ्युदाय को हिन्दी ही के रूप में पहचाना था। उसी सर्वतोमुखी सशक्त जातीय अभ्युत्थान की चेतना को वाणी देने के प्रयत्न में हिन्दी का भी कण्ठ फूटा था, उसने अपनी मध्ययुगीन ब्रजभाषा की तुतलाहट ही को नहीं छोड़ दिया था, उसके भीतर एक सबल भावना का सिन्धु भी हिलोरे लेने लगा था।'23 इस प्रकार पंत जी के चिन्तन में भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र, शब्द अर्थ का सौहित्य ही न होकर एक राष्ट्रीय जागरण, एक सामाजिक प्रेरणा शक्ति के रूप में, एक मानवीय सौन्दर्य बोध तथा एक नवीन आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हुई थी क्योंकि उनकी दृष्टि में कविता का काम सोयी हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में नवीन रागात्मकता की माधुर्य ज्वाला प्रज्वलित करना, नवीन जीवन दृष्टि का सौन्दर्यबोध उद्बुद्ध करना तथा नवीन विश्व

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

मानवता के स्वप्नों का आलोक पैदा करना है। इसीलिए उन्हें काव्य माध्यम के रूप में ब्रजभाषा ससीम लगी और उन्होंने उस पर बहुत दुराग्रही होकर आक्रमण किया "अब भारत के कृष्ण ने मुरली छोड़ पांचजन्य उठा लिया है, सुप्तदेश की वाणी जागृत हो उठी है, खड़ी बोली उस जागृति की शंख ध्वनि है। ब्रजभाषा में नींद की मिठास थी. इसमें जागृति का चन्दन, उसमें रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्सना, इसमें दिवस का सशब्द कार्य-व्यंग्य प्रकाश ।" पंत जी ने पल्लव की भूमिका में विचार किया।कुछ कथन हैं-

- ब्रजभाषा में स्निग्धता एवं माधुर्य तो है, किन्तु युगीन संवेदना की वाहक शक्ति का अभाव है।
- ब्रजभाषा की साहित्य परम्परा में संकीर्णता एवं विलास जर्जरता है।
- ब्रजभाषा का संगीत, शब्द भण्डार 'पुरानी छींट की चोली' की तरह कृत्रिम है, ताजगी का अभाव है।
- खड़ी बोली जनजागरण की प्रतीक है, तो ब्रजभाषा सुषुप्त मनोदशा की व्यंजक ।

पंत जी के कथन महत्वपूर्ण है किन्तु स्वीकार करना होगा कि ब्रजभाषा का महत्त्व कम नहीं है। ब्रजभाषा ने एक समय सामंतवाद एवं सत्तावाद को गम्भीर चुनौती देकर मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित किया था , इसीलिए पंत के समय में ही निराला ने यह स्वीकार किया कि, 'आज किसी प्रान्तीय भाषा के साथ अपने हृदय की पूर्णता और उज्ज्वल उत्कर्ष पर विश्वास रखकर वार्तालाप करने की शक्ति, हिन्दी के प्रचलित दो रूपों में, यदि किसी में है, तो ब्रजभाषा में। ब्रजभाषा का प्रभाव बंगाल के प्रथम वैष्णव कवियों पर भी पड़ा और सुदूर गुजरात तक फैला ।'24 कृष्ण की मुरली की धुन ने तो समस्त जड़ताओं को तोड़कर, शास्त्रीय रूढ़ियों को तोड़कर विशुद्ध प्रेम की जो प्रतिष्ठा की है, उसकी मिसाल विश्वकविता में दुर्लभ है। निराला ने लिखा है कि, 'ब्रजभाषा के एक भूषण ने भारतीय राष्ट्र के लिए जो कार्य किया, वैसा कार्य इधर तीन सौ वर्ष के अन्दर समग्र भारतवर्ष में अपनी कवित्व प्रतिभा द्वारा कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। प्रचलित रीतियों और अपने जातीय में मूल धर्मभावों से प्रेरित होकर एक कृष्ण को ही उन लोगों ने अपनी रस सृष्टि का मूलाधार स्वरूप ग्रहण किया, और स्मरण रहे, कृष्ण वह हैं, जिनके पेट में चौदहों भुवन-यह एक पृथ्वी या केवल यूरोप नहीं चौदहों भुवन समाये हुए हैं।'25 ब्रजभाषा पर लगाये गये आरोपों से अलग हटकर यदि देखें तो पंत जी के काव्यचिन्तन का यह महत्त्वपूर्ण आयाम है कि उन्होंने खड़ी बोली को जागरण के शंखनाद के रूप में रेखांकित किया। उनके अनुसार, 'हिन्दी हमारे भीतर भाषा के अतिरिक्त एक राष्ट्रीय जागरण, एक सामाजिक प्रेरणा शक्ति के रूप में एक मानवीय सौन्दर्यबोध तथा एक नवीन आत्माभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हुई थी।'

पंत जी ने कविता की भाषा में राग तत्त्व, व्याकरणिकता, चित्रात्मकता एवं भाव-भाषा के सामंजस्य को विशेष महत्त्व दिया। उनके अनुसार -

- 'भाषा का और मुख्यतः कविता की भाषा का, प्राण राग है। राग का अर्थ आकर्षण है, यह वह शक्ति है, जिसके विद्युत्स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुँचते हैं।'26
- 'भाव और भाषा का सामंजसय, उनका स्वरैक्य ही चित्र राग है। जहाँ भाव और भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य नहीं रहता, वहाँ स्वरों के पावस में केवल शब्दों के बटु-समुदाय ही, दादुरों की तरह, इधर-उधर कूदते, फुदकते तथा साम ध्वनि करते सुनाई देते हैं।'27
- 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों। वे सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो।'28
- 'भाषा संसार का नादमय चित्र है ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हृतंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।'29
- जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध होते हैं उसी प्रकार दूसरी ओर राग से आकाश में पक्षियों की तरह स्वतंत्र भी होते हैं।'30

इसीलिए पंत जी ने नवीन युगीन यथार्थ एवं संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए नवीन राग, नवीन रागिनी, नये छन्द, नवीन कल्पनाओं एवं भावनाओं की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने जहाँ एक ओर भाषा की लाक्षणिक एवं व्यंजनागर्भिता पर बल दिया, वहीं बिम्बवादियों की तरह चित्रात्मकता को काव्य भाषा का आवश्यक तत्त्व स्वीकार किया। पंत जी ने इसी चित्रात्मकता एवं नाद सौन्दर्य के लिए शब्दों के पर्याय की व्यंजना शक्ति पर भी विचार किया। पंत जी की दृष्टि में संस्कृत की पर्याय कल्पना से अंग्रेजी की पर्याय कल्पना अधिक सक्षम एवं वैज्ञानिक है, किन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। पंत जी यहाँ वर्डसवर्थ एवं कॉलरिज से प्रभावित ही नहीं मोहासक्त दिखाई देते हैं, तभी उनके विचार में यह भाव बैठ गया था कि संस्कृत में पर्याय शब्दों की अधिकता वर्णवृत्तों की आवश्यकता पूर्ति का साधन है। वह अंग्रेजी की भाँति भावों के छोटे उतार-चढ़ाव, श्रुति तथा मूर्छनाओं, लघु गुरू भेदों को प्रगट करने का समर्थ माध्यम नहीं है। पंत जी पल्लव काल में १९वीं सदी के अंग्रेज कवियों मुख्यत: शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स एवं टेनिसन से विशेष प्रभावित होने की बात स्वयं ही स्वीकार कर चुके हैं। इसी विशेष प्रभाव के कारण जहाँ एक ओर ब्रजभाषा के ऐतिहासिक दाय को अस्वीकार कर देते हैं, वहीं संस्कृत भाषा की शब्द निर्माण शक्ति को पहचान नहीं पाते। कृष्णदत्त पालीवाल ने सार्थक टिप्पणी की है, 'काव्यभाषा को लेकर पाश्चात्य जगत के 'शब्दों पर पन्त जी इतने आसक्त थे कि उन्हें 'टच्' की कोमलता 'स्पर्श' में नहीं मिलती। 'ज्वाय से जैसा मुंह भर जाता है, वैसा 'हर्ष' से नहीं भर पाता। इस प्रकार शब्द प्रयोगों ध्वनि प्रयोगों में वे पाश्चात्य कवियों के ऋणी हैं।'31 लेकिन इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि पश्चिम से प्रभावित होते हुए भी हिन्दी काव्यशास्त्र की निर्माणक शक्ति के विषय में उनकी चेतना भारतीय है तथा हिन्दी भाषा की जातीय पहचान को अग्रसर करने का गहरा भाव उनमें विद्यमान है।

पंत जी काव्य भाषा के लिए व्याकरण के नियमों को प्रचलित अर्थ में ग्रहण न करके भाव, राग के पैमाने पर स्वीकार किया। लिंग निर्धारण सम्बन्धी उनका विचार इसी की एक कड़ी है, जहाँ वे यह मानते हैं कि लिंग का निर्णय शब्द के अर्थ के अनुसार स्वीकार करना चाहिए- अकारान्त इकारान्त के अनुसार नहीं। जिसमें कोमलता हो वह स्त्रीलिंग है तथा जिसमें परूषता हो वह पुल्लिंग है; किन्तु पंत जी अपने कवि कर्म में इस सिद्धान्त पर टिके नहीं रह पाये, निराला जी ने 'पन्त जी और पल्लव' नामक लेख में इस पर विस्तार से चर्चा किया।

अलंकार एवं छन्द विधान:

अलंकारों को लेकर पंत जी का दृष्टिकोण नवजागरणकालीन भावबोध से प्रेरित है। उन्होंने 'वाणी' शीर्षक कविता में लिखा है

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।

यहाँ पंत जी अलंकारों का निषेध नहीं करते और न ही अलंकारवादी संस्कृत-हिन्दी आचार्यों की तरह काव्य का अनिवार्य धर्म मानते हैं। वे क्रोचे की तरह अलंकार तथा अलंकार्य को अभिन्न नहीं मानते, किन्तु वे अलंकार की स्वतंत्र सत्ता का समर्थन करते हैं। वे अलंकारों को ऊपर से आरोपित आभूषण न मानकर उसे अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग मानते हैं। उनकी दृष्टि में अलंकारों की स्वतंत्र सत्ता अभिव्यक्ति में है, किन्तु वे साध्य न होकर साधन मात्र हैं। उनका विचार है कि, 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। वे वाणी के हास अश्रु, स्वप्न पुलक हाव- भाव हैं। जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावों की उदारता शब्दों की कृपण जड़ता में बंधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह इकसार हो जाती है।'32 पंत जी का यह विचार हिन्दी के निजी काव्यशास्त्र के चरित्र की ओर संकेत करता है।

पंत जी छन्द को कविता के स्वाभाविक, सहज अंग के रूप में ग्रहण करते हुए उस पर मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं। उनके अनुसार, 'कविता तथा छन्द में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हत्कम्पन । कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।' 33 किन्तु पंत जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाँति यह भी निर्देशित किया कि कवियों को अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुकूल ही कुछ विशेष छन्दों का प्रयोग करना चाहिए, 'सभी कवि सभी छन्दों में सफलतापूर्वक रचना कर भी नहीं सकते।'34 इसीलिए वे अपनी व्यक्तिगत रूचि के धरातल पर मात्रिक छन्दों को वर्णवृत्तों से श्रेष्ठ माना है, तो बंगला, संस्कृत एवं अंग्रेजी छन्दों को हिन्दी की जातीय प्रकृति के प्रतिकूल स्वीकार किया। उनके विचार में-

- 'हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उसी के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा हो सकती है। ...... हिन्दी का संगीत ही ऐसा है कि उसके सुकुमार पदक्षेप के लिए वर्णवृत पुराने फैशन के चांदी के गहनों की तरह भारी हो जाते हैं।'35
- 'सवैया तथा कवित्त छन्द भी मुझे हिन्दी कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ते। सवैया में एक ही सगण की आठ बार पुनरावृत्ति होने से, उसमें एक प्रकार की जडता. एकस्वरता (मोनोटनी) आ जाती है।'36
- 'बंगला के छन्द भी हिन्दी कविता के लिए सम्यक् वाहन नहीं हो सकते, बंगला भाषा का संगीत आलाप प्रधान होने से अनियंत्रित-सा है। यदि अंग्रेजी तथा बंगला के शब्द हिन्दी के छन्दों में कम्पोज कर दिए जाएं, तो वे अपना स्वर खौ बैठें।'37
- कवित्त छन्द मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्य पुत्र है, न जाने, यह हिन्दी में कैसे और कहाँ से आ गया ।'38
- मात्रिक छन्दों के स्वागत के लिए वार्णिक छन्दों का तिरस्कार पंत जी की एकांगी स्थापना है, जिसके मूल में पंत जी का यह विचार था कि, 'काव्य संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं, न कि व्यंजन ।' कवित्त छन्द को विदेशी कहना भी सन्तुलित विचार नहीं है। निराला ने उनके कवित्त-छन्द सम्बन्धी विचारों को अस्वीकार कर दिया- "उनके (पंत जी) स्वभाव का स्त्रीत्व कवित्त जैसे पुरूषत्व प्रधान काव्य के समझने में बाधक हुआ। रही संगीत की बात, सो संगीत में भी स्त्री-पुरूष भेद हुआ करता है। अक्षर मात्रिक स्वर प्रधान राग स्त्री भेद में और व्यंजन प्रधान पुरुष भेद में होगें।"

मुक्त छंद विषयक धारण छायावादी काव्य चिन्तन की विशेष उपलब्धि है, जो सर्वप्रथम निराला के देन हैं, किन्तु पन्त जी ने भी अपने कुछ विचारों से इस धारणा को आगे बढ़ाया। यद्यपि कि पंत जी स्वयं को मुक्त छन्द का प्रवर्तक मानकर पल्लव संग्रह की कविताओं को मुक्त छंद की रचना माना था, जिसकी निराला ने पंत जी की कविताओं में मुक्त छंद की एक लड़ी भी नहीं है,कहकर अस्वीकार कर दिया था। पन्त जी के अनुसार

खुल गए छन्द के बन्ध, प्रास के रजत पाश,
अब गीतमुक्त, और युगवाणी बहती अयास ।39
छंद बंध खुल गए, गद्य क्या बनीं स्वरों की पातें?
सोना पिघलकर कभी क्या पानी बनता है? कैसी बातें !
गीत गल गया सही, मधुर झंकार नहीं पर खोई,
सूक्ष्म भाव के पंख खोल, अब मन में गंध समोई !40

पंत जी ने पल्लव की भूमिका में लिखा है कि "यह 'स्वच्छ छंद' ध्वनि अथवा लय पर चलता है। इस मुक्त छंद की विशेषता यह है कि इसमें भाव तथा भाषा का सामंजस्य पूर्ण रूप से निभाया जा सकता है। मुक्त काव्य आन्तरिक ऐक्य, भाव जगत के साम्य को ढूँढता है। उसमें छन्द के भावानुकूल ह्रस्व-दीर्घ हो सकते हैं। अन्य छन्दों की तरह मुक्त काव्य भी हिन्दी में ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत की लय पर ही सफल हो सकता है।"41उन्होने विचार करते हुए आगे लिखा कि "छन्द का राग भाषा के राग पर निर्भर रहता है, दोनों में स्वरैक्य रहना चाहिए।... जहाँ दोनों में मैत्री नहीं रहती, वह छन्द अपना 'स्वर' खो बैठता है-उदाहरणार्थ मेरे मित्र हिन्दी के भावुक सहृदय कवि निराला जी के छन्दों को लीजिए।"42 इस प्रकार मुक्त छन्द को ठीक से विचार किए बगैर पन्त जी निराला के मुक्त छन्द में दोष ढूंढ़ने लगे, जब कि निराला जी ने कवि कर्म एवं चिन्तन कर्म दोनों ही स्तरों पर मुक्त छंद की ऐतिहासिक-सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए उसे मनुष्य की मुक्ति से जोड़ दिया था। निराला जी ने पन्त जी की अवधारणाओं को तार-तार करते हुए मुक्त छन्द का सही चरित्र सामने रखा, जो हिन्दी के निजी काव्यशास्त्र की विशिष्टता की द्योतक है-पन्त जी कविताओं में मुक्त छन्द की एक लड़ी भी नहीं।—--- पन्त जी को तो गीतिकाव्य और स्वच्छन्द छन्द का सही भेद ही ज्ञात नहीं- स्वच्छन्द छंद में 'आर्ट ऑफ म्युजिक नहीं मिल सकता, वहाँ है 'आर्ट ऑफ रीडिंग'। यह स्वर प्रधान नहीं, व्यंजन प्रधान है। कविता की स्त्री सुकुमारता नहीं, कवित्त का पुरूष गर्व है। उसका सौन्दर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में है। उसकी सृष्टि कवित्त छन्द से हुई है, जिसे पन्त जी विदेशी कहते हैं।'43

इसमें सन्देह नहीं कि पंत जी छंद के मर्म से परिचित हैं और छन्द में तुक के अतिरिक्त लय की सिद्धि पर भी बल देते हैं।उनके ये विचार सर्वथा अनुकूलहै-'छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।', 'तुक राग का हृदय है।', 'प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण संगीत के अनुकूल होने चाहिए।' बावजूद इसके कहा जा सकता है कि पल्लव की भूमिका के वाक्यों में छंद सम्बन्धी उनका मौलिक विवेचन छिपा है, जो रेखांकित करने योग्य है। असहमत हुआ जा सकता है किन्तु अस्वीकार करना असम्भव है।

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

छायावाद एवं परवर्ती काव्य दृष्टि पर विचार:

लोकचेतना की भावभूमि पर खड़े होकर पंत जी जब हिन्दी कविता की इतिहास यात्रा पर विचार करते हैं, तो छायावादी विचारभूमि वह प्रस्थान बिन्दु बनता है, जहाँ से प्रगतिशील विचारयात्रा जुड़ती है। पंत जी का मानना है कि'प्रगतिशील कविता वास्तव में छायावाद की ही एक धारा है। दोनों के स्वरों में जागरण का उदात्त सन्देश मिलता है- एक में मानवीय जागरण का, दूसरे में लोक जागरण का। दोनों की जीवन दृष्टि में व्यापकता रही है एक में सत्य के अन्वेषण या जिज्ञासा की, दूसरे में यथार्थ की खोज या बोध की। दोनों ही वैयक्तिक क्षुद्र अहंता को अतिक्रम कर प्रवाहित हुई है; एक ऊपर की ओर, दूसरी विस्तृत धरातल की ओर।'44 प्रगतिवाद को छायावाद की ही एक धारा मानना थोड़ा अतिकथन होगा किन्तु यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है, कोई संकट नहीं कि प्रगतिवाद की विकासयात्रा के बीज छायावादी विचारभूमि में विद्यमान हैं। प्रगतिवाद के निर्माण में मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका से कम भूमिका छायावाद की नहीं है। दरअसल कविता की संवेदना की संस्कृति युगचेतना एवं युग-सत्य से अनुप्राणित रही है। उन्होंने लिखा है कि, 'मैंने प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को छायावाद की उपशाखाओं के रूप में इसलिए माना है कि मूलतः ये तीनों धाराएँ एक ही युग चेतना अथवा युगसत्य से अनुप्राणित हुई हैं। उनके रूपविधान तथा भावना सौष्ठव में कोई विशेष अन्तर नहीं और अपने विचार दर्शन में भी वे भविष्य में एक दूसरे के निकट आ जायेंगी। ये तीनों धाराएं एक दूसरे की पूरक हैं।'45 पंत जी के इस विचार के बाद ऐसे आलोचकों का विचार यहाँ बौना लगने लगता है, जो यह कहते हैं कि 'प्रगतिवाद छायावाद के यौवन का गला घोंटकर पैदा हुआ।' दरअसल पंत जी के काव्यचिन्तन का यह सकारात्मक पक्ष है कि वे छायावादी कविता को केवल 'कल्पना के कानन की रानी' मात्र नहीं मानते है और न हीं व्यक्तिवाद को उसका केन्द्र । उनकी दृष्टि में छायावाद के माध्यम से पुनर्जागरण की जिस शक्ति का उदय हुआ वह विश्वसभ्यता के इतिहास का ही नहीं बल्कि मानव चेतना, महान सांस्कृतिक क्रान्ति के उदय का भी युग बनकर आया। इसीलिए छायावाद में हमें 'राष्ट्रीय जागरण के मुखर गीतों के अतिरिक्त मानवीय जागरण के गम्भीर स्वप्न-मौन, संवेदन-भरे स्वर तथा धरती के जनजागरण के संघर्ष-मुखर विद्रोह-भरे स्वर भी एक साथ सुनने को मिलते हैं।

कहना न होगा कि छायावादी कवियों ने कविता के वर्ण्य क्षेत्र में ही विस्तार नहीं किया, बल्कि उसके चिन्तन के धरातल को भी बहुआयामी बना दिया। पंत जी ने लिखा है कि, 'छायावाद से पहले खड़ी बोली का काव्य भाव तथा भाषा की दृष्टि से निर्धन ही रहा। छायावाद ने उसमें अँगड़ाई लेकर जागते हुए भारतीय चैतन्य का भाव-वैभव भरा। विश्वबोध के व्यापक आयाम, लोकमानव की नवीन आकांक्षाएँ, जीवन प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत-अहंता के मांसल सौन्दर्य का परिधान उसने पहले पहल हिन्दी कविता को प्रदान किया।'46

निष्कर्षतः पन्त जी पर पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी विचारधारा एवं विचारक शेली, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज का प्रभाव है, तो रवीन्द्रनाथ की बंगाली साहित्य परम्परा का, किन्तु पन्त जी पर सर्वाधिक प्रभाव युगीन सामाजिक-सांस्कृतिक -राजनैतिक- आर्थिक चेतना का है। जिस समय उन्होंने अपनी भूमिकाओं के माध्यम से हिन्दी काव्यशास्त्र की सम्भावनाओं के द्वार खोले थे, उस समय हिन्दी आलोचना 'देव बड़े कि बिहारी' के मुहावरों में खोकर रूढ़िग्रस्त तो थी ही, कविता के प्रतिमान भी पुराने थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की गम्भीर आलोचनाएं प्रायः सामने नहीं आई थीं। उन्होंने अपने युग की कविता पर विचार करने के लिए नये प्रतिमानों को निर्माण किया। उन्होंने काव्य की अभिव्यंजना को अत्यन्त प्रौढ आधार दिया। पल्लव की भूमिका में एक युवक चिन्तक की उत्तेजना दिखाई देती है, तो 'गद्य पथ', 'आधुनिक कवि की भूमिकाओं में उनके चिन्तन की प्रौढ़ता दिखाई देती हैं। उन्होंने हिन्दी काव्यशास्त्र एवं आलोचना दोनों को ही देश-विदेश के चिन्तन के आस-पास रखकर गतिशील बनाया। काव्य के अन्तरंग एवं बहिरंग का विश्लेषण उनकी विशिष्ट उपलब्धि है। उनके चिन्तन में विद्यमान विवाद की रेखाएं संवाद के नये सूत्रों की ओर ले जाने का सामर्थ्य रखती हैं।

सन्दर्भ

1. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। साहित्यकार के स्वर। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 206।
2. हिन्दी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 590।
3. गद्य पथ। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 172-173।
4. पंत, सुमित्रानंदन। आधुनिक कवि, भाग 2। भूमिका। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
5. गद्य पथ। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 124।
6. पंत, सुमित्रानंदन। रश्मिबन्ध। भूमिका। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 50।
7. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: मेरी कविता का परिचय। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 249।
8. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: परिदर्शन। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 290।
9. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: मेरी कविता का परिचय। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 250।
10. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: परिदर्शन। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 293।
11. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: परिदर्शन। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 290।
12. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: मेरी कविता का परिचय। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 250।
13. वही। पृ. 251।
14. वही। पृ. 373।
15. वही। पृ. 373।
16. वही। पृ. 373।
17. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 374।
18. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 387।
19. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 388।
20. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 478।
21. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 292।
22. पंत, सुमित्रानंदन। परिदर्शन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 292।

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

23. पंत, सुमित्रानंदन। परिदर्शन। पंत ग्रंथावली। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 291।
24. त्रिपाठी, सूर्यकांत 'निराला'। निराला रचनावली-5। सं. नंदकिशोर नवल। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 1983। पृ. 187।
25. त्रिपाठी, सूर्यकांत 'निराला'। निराला रचनावली-5। सं. नंदकिशोर नवल। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 1983। पृ. 189।
26. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव: प्रवेश। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 15।
27. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव: प्रवेश। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 18।
28. वही। पृ. 26।
29. वही। पृ. 26-27।
30. आस्था के चरण। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 645।
31. पालीवाल, कृष्णदत्त। हिन्दी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार। नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन। पृ. 564।
32. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 33।
33. पंत, सुमित्रानंदन। ग्राम्या। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1940। पृ. 103।
34. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव: प्रवेश। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 21।
35. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 26।
36. वही। पृ. 37।
37. वही। पृ. 37।
38. वही। पृ. 38।
39. पंत, सुमित्रानंदन। युगवाणी। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1938। पृ. 3।
40. पंत, सुमित्रानंदन। अंतिमा। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
41. पंत, सुमित्रानंदन। पल्लव: प्रवेश। इलाहाबाद: इंडियन प्रेस; 1926। पृ. 32-33।
42. वही।
43. त्रिपाठी, सूर्यकांत 'निराला'। प्रबन्ध पद्म। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। पृ. 129।
44. पंत, सुमित्रानंदन। पंत ग्रंथावली: परिदर्शन। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; 2004। पृ. 292।
45. वही। पृ. 297।
46. वही। पृ. 292।

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/